chapter. 2

भारतीय शास्त्रीय संगीत का इतिहास

किसी भी विषय के भविष्य का आकलन करने से पहले आवश्यक है कि उस विषय के इतिहास पर दृष्टिक्षेप किया जाय। इस आवश्यकता को देखते हुये यहाँ भारतीय संगीत के इतिहास का उल्लेख करना आवश्यक है। यहाँ 'भारतीय संगीत का इतिहास' यह संज्ञा इसलिये दी गयी है कि मुगल-काल से पहले समस्त भारत में एक ही प्रकार का संगीत प्रचलित था; भारतीय संगीत मुगल-काल से ही दो धाराओं में विभक्त हुआ है। एक धारा कर्नाटक अथवा दक्षिण भारतीय संगीत कहलाई और दूसरी उत्तर भारतीय अथवा हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के रूप में सामने आई। दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति पर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति की अपेक्षा मुगल संस्कृति का प्रभाव कम पड़ा है।

भारतीय संगीत के इतिहास का विवेचन यहाँ इसलिये उपयोगी है कि इससे हमें ज्ञात होता है कि, संगीत किस प्रकार कालक्रम के अनुसार परिवर्तित होता हुआ आज की अवस्था तक पहुँचा है।

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की वर्तमान स्थिति को देखते हुये उसके भविष्य के विषय में दो प्रकार के मत देखने को मिलते हैं, एक मत आशावादी है दूसरा निराशावादी। परिवर्तन से भयभीत होकर निराशावादी होने से कोई लाभ नहीं है। परिवर्तन जीवन के लिये आवश्यक है, प्राकृतिक तथा वैज्ञानिक भी है। ये परिवर्तन सदियों से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होते आ रहे हैं और होते रहेंगे फिर संगीत-कला इनसे कैसे अछूती रह सकती है। संगीत-कला को परिवर्तन से दूर करने का परिणाम भी वही होगा जो बँधे हुये पानी का होता है। एक समय के बाद उसमें सड़ाँध उत्पन्न हो जाती है।

ये देखना दूसरा विषय है कि ये परिवर्तन उचित दिशा में हो रहे हैं या नहीं? इसके लिये **समालोचक** दृष्टि रखकर शास्त्रीय संगीत की वर्तमान समस्याओं का अध्ययन आवश्यक है। इन समस्याओं के समाधान उचित दिशा

में हो इसकी भी अतिआवश्यकता वर्तमान परिस्थितियों में प्रतीत होती है। इन समस्याओं के सामाधान के लिये आवश्यक है कि इतिहास में संगीत किस प्रकार कालक्रम से परिवर्तित हुआ तथा उस परिवर्तन की क्या अवस्थायें रहीं हैं, इसका अध्ययन किया जाय और इस अध्ययन तथा अनुभवों का लाभ वर्तमान में भविष्य को समुन्नत तथा समृद्ध करने के लिये किया जाय। इसके अतिरिक्त इन विद्वानों के कथनों द्वारा भी इस बात का महत्व ज्ञात होता है कि इतिहास का अध्ययन हमें नवजीवन प्रदान करने वाला होता है।—

जॉन हील के कथनानुसार –

"इतिहास हमें एक एसी दुनियाँ में ले जाता है जहाँ हमें खोई हुई जिन्दगी प्राप्त होती है, जहाँ हमें विकास की मंजिल की ओर अग्रसर होने के लिये नवीन आधार मिलते हैं।"१

कु. वायला के कथनानुसार –

"इतिहास का प्रकाशन ही हमें मानव की सजीव गौरव गरिमा का स्फूर्तिपूर्ण सौरभ प्रदान करता है, इतिहास हमारी प्रसुप्त धमनियों में नवजीवन की धारा प्रवाहित करता है, और हमें जिंदगी की दैदिप्यमान मंजिल की ओर ले जाता है।"२

एफन का वचन इसी संदर्भ में है कि –

"संगीत का सच्चा इतिहास तभी समझा जा सकेगा, जबकि हम निर्माण के संगीत को समझेंगे।"३

इस प्रकार इतिहास के अध्ययन द्वारा हम भविष्य के लिये प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। भविष्य को अधिक उज्जवल तथा समृद्ध बना सकते हैं; उसे पतन के गर्त में

---

१ 'भारतीय संगीत का इतिहास' उमेश जोशी, पृ. २
२ वही " " " , " " , पृ.२
३ वही " " " , " " , पृ.२

गिरने से रोक सकते हैं। अतः इस दृष्टि से यहाँ वैदिक काल से वर्तमान युग तक संगीत की विकास-यात्रा का विवेचन आवश्यक है।

यद्यपि वैदिक-काल से पहले भी भारतीय संगीत का प्रागैतिहासिक काल है, जिसे विद्वानों ने संगीत के इतिहास का अंधकार-युग कहा है इस अंधकार-युग से अभिप्राय उस सुदूर एवं अतीत कालखंड से है जिसके संबंध में किसी सूत्रबद्ध ऐतिहासिक सामग्री की उपलब्धि नहीं होती; इसीलिये उसे अंधकार युग की उपमा दी गयी है। परंतु अन्वेषणकर्ताओं ने इस अंधकार युग के कुछ पाषाण-चिन्ह प्राप्त कर लिये हैं, इसके आधार पर इस युग को इतिहासज्ञों ने चार भागों में बाँटा है।[१]

१ पूर्व पाषण काल
२ उत्तर पाषाण काल
३ ताम्र काल
४ लौह काल

विषय के संदर्भ में इस कालखंड के उल्लेख की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। इसके पश्चात् भारतीय संगीत के इतिहास का विभाजन इस प्रकार हुआ है —

१ अति प्राचीन काल (वैदिक काल)[२]
२ प्राचीन काल (वैदिक सांस्कृतिक परंपरा समाप्त होने के बाद से तथा मुस्लिम-काल से पहले तक)[३]
३ मध्य काल (मुस्लिम-युग)[४]
४ आधुनिक काल (१८०० ईसवीं से वर्तमान तक)[५]

---

१ 'भारतीय संगीत का इतिहास', उमेश जोशी, पृ. ५३
२ वही " " " , " " , "
३ वही " " " , " " , "
४ वही " " " , " " , "
५ वही " " " , " " , "

१ अति प्राचीन काल (वैदिक-काल) में संगीत —

वैदिक युग भारत के सांस्कृतिक इतिहास में प्राचीनतम युग माना जाता है। भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों का सर्वप्रथम स्वरूप इसी युग के साहित्य में उपलब्ध होता है। वैदिक युग से अभिप्राय उस सुदीर्घ कालखंड से है जिसमें चार वेदों तथा उसके विविध अंगों का विस्तार हुआ ये चार वेद ऋगवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा सामवेद हैं। इसके अतिरिक्त उपनिषदों तथा शिक्षा-ग्रंथों में तत्कालीन संगीत साधना के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं।

"त्रिविद्धं शिल्पं नृत्यं गीतं वादितमिति।"[१]

संपूर्ण वैदिक साहित्य में स्थान-स्थान पर गीत, वादन तथा नृत्य का उल्लेख पाया जाता है; इससे यह स्पष्ट होता है कि इन तीनों कलाओं का वैदिक काल में अभिन्न साहचर्य था। 'गायन' को वैदिक युग में भी इन तीनों कलाओं में श्रेष्ठता प्रदान की गयी थी।

वैदिक काल में स्वरों का पर्याप्त विकास हो चुका था। अनुदात्त, उदात्त तथा स्वरित के आधार पर क्रमशः मंद्र, तार तथा मध्य सप्तक की परिकल्पना वैदिक युग में भी हो चुकी थी।[२] इसी के आधार पर सात स्वरों की कल्पना भी हो चुकी थी ये सप्त स्वर क्रमशः इस प्रकार थे — कुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मंद्र, एवं अतिस्वर।[३] नारदीय शिक्षा आदि ग्रंथों में साम-गायन के सप्त स्वरों का विधान है।[४]

इस काल में गान प्रबंधों के भी अनेक उल्लेख दृष्टिगोचर होते हैं; इन गीत प्रबंधों का उल्लेख गीति, गाथा, साम, तथा गायत्र के नाम से पाया जाता है।[५] इस काल में गायन का

---

१ 'भारतीय संगीत का इतिहास' शरच्चंद्र परांजपे, पृ. १९
२ वही " " " " , " , " , पृ. ८२
३ वही " " " " , " " पृ. ८९
४ वही " " " " , " " पृ. ९०
५ वही " " " " , " " पृ. २०

प्रतिनिधित्व सामगायन करता था। सामगायन का सर्वाधिक प्रचार था। यज्ञ आदि अवसरों पर सामगायन आवश्यक था। जिस प्रकार रागों का नामकरण उनके रचयिताओं के नाम पर किया जाता है यथा रामदासी मल्हार, मियाँ की सारंग, सूरदासी मल्हार आदि उसी प्रकार इन सामों का नामकरण इनके रचयिताओं के नाम पर किया जाता था। साम के कई प्रकार प्रचलित थे यथा गायत्र, शाक्वर, वैरूप, रैवत, भद्र आदि।[1] ऋग्वेद में साम की उत्पत्ति पुरुष प्रजापति से मानी गयी है।[2] साम गायन में दैवी शक्ति का निवास माना जाता था। आर्यों की ऐसी दृढ़ धारणा थी कि नियमपूर्वक गाये गये साम द्वारा यज्ञ में जब किसी देव विशेष की स्तुति की जाती थी तो उससे देव प्रसन्न होते थे।

अश्वमेध यज्ञ के अंतर्गत सामगायन के साथ ही गाथा गान भी प्रचलित था।[3] साम संगीत विशुद्ध रूप से मंत्रात्मक तथा देवस्तुतिपरक संगीत था, गाथा गान देवता और वीर पुरुष दोनों की स्तुति के लिये गाया जाने वाला संगीत था। 'गाथा' के अन्य भेदों 'नाराशंसी', 'रैभी' का भी उल्लेख मिलता है।[4] इसमें नाराशंसी को निम्न श्रेणी का माना जाता था। सूर्या की विवाह यात्रा पर किये गये गानों में रैभी, नाराशंसी, गाथा आदि गीत प्रकारों का उल्लेख प्राप्त होता है।[5] इससे स्पष्ट होता है कि विभिन्न समारोहों के अवसर पर मनोविनोद के लिये व्यवसायी गायक उक्त प्रकार के गीतों का गायन करते थे।

इस प्रकार उक्त प्राप्त उल्लेखों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना अस्वाभाविक न होगा कि वैदिक

---

१ 'भारतीय संगीत का इतिहास', शरच्चंद्र परांजपे, पृ. २१
२ वही " " " " , " " , पृ. ३
३ वही " " " " , " " , पृ. ३६
४ वही " " " " , " " , पृ. ४९
५ वही " " " " , " " , पृ. ४९

काल में भी संगीत की दो धारायें स्पष्ट रूप से प्रचलित थीं। पहली साम संगीत जो कि धर्म से जुड़ा आध्यात्मिक संगीत प्रकार माना जाता था दूसरा सामेतर संगीत जिसके अंतर्गत गाथा, नाराशंसी आदि को रखा जा सकता है। सामेतर संगीत का प्रयोग लोकरंजन के लिये किया जाता था उस काल का लौकिक संगीत भी कहा जा सकता है।

साम का गायन ऋग्वेद की ऋचाओं के द्वारा होता था।[1] अतः साम गायन में साहित्य का प्रयोग भी संगीत के साथ किया जाता था। कहीं-कहीं सामगान के सामूहिक गान के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं।[2] ऐसे वृंदगान में साम के विभिन्न भाग विभिन्न गायकों द्वारा गाये जाते थे।

साम के गान-ग्रंथों में स्वरांकन के रूप में १ से लेकर ७ तक अंकों का प्रयोग पाया जाता है।[3] स्वरांकन के लिये इन सात अंकों के अतिरिक्त कुछ अन्य चिन्हों का प्रयोग गान-ग्रंथों में पाया गया है।[4] उपयुक्त स्वर तथा वर्ण से विहीन मंत्र का प्रयोग यज्ञ के यजमान के लिये अत्यधिक अनर्थकारक माना जाता था यही कारण था कि प्राचीन वैदिक साहित्य में स्वरांकन इतनी उच्च कोटि तक विकसित हो चुका था। जैसे आज गायकी पद्धति में सप्तस्वर सा, रे, ग, म, प, ध, नी इस प्रकार आरोही क्रम से लिये जाते हैं। सामगान में यही स्वर थोड़ी दूसरी तरह से अवरोही प्रयुक्त होते हैं। ये क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मंद्र व अतिस्वार्य हैं। सामगान में ये स्वर अक्षरों के ऊपर १-२-३-४-५-६-७ इन अंकों द्वारा दर्शाये जाते थे। पंडित गं. भि. आचरेकर ने इसे इस प्रकार दर्शाया है—

हिन्दी स्वर —	म	ग	रे	सा	नि	ध	प
साम स्वरांक —	१	२	३	४	५	६	७

---

१ 'भारतीय संगीत का इतिहास' शरच्चंद्र परांजपे, पृ. ५५
२ वही " " " " , " " , पृ. ३०
३ वही " " " " , " " , पृ. ८७
४ वही " " " " , " " , पृ. ८८

इस पद्धति में सामस्वरों का अंकीय क्रम यदि चढ़ता है तो स्वर अवरोही हैं। इन्हें इसी क्रम में लेना होता है।[१]

वैदिक काल में वेदों के यथार्थ उच्चारण का अभूतपूर्व महत्व था, यहाँ तक कि एक आध वर्ण का अशुद्ध उच्चारण अपार हानि की संभावनाओं से भरा रहता था। यही कारण था कि वेदों के स्वर तथा वर्णों की व्यवस्थित शिक्षा प्राचीन शिक्षाशास्त्रों का महत्वपूर्ण अंग थी। विभिन्न वेदों के शिक्षा-ग्रंथ उनकी विशिष्टताओं के अनुसार भिन्न होते थे। इसी कारण प्रत्येक वेद की अपनी निजी शिक्षा है, जिसमें वेद के अनुकूल वर्णोच्चारण तथा अन्य विधियों का विधान पाया जाता है। शिक्षा वाङ्मय में प्राचीनता तथा प्रामाणिकता की दृष्टि से निम्न शिक्षाओं की गणना की जाती है, जो क्रमशः ऋग्वेद, यजु, साम तथा अथर्व वेद से सम्बद्ध हैं — पाणिनीय, याज्ञवल्क्य, नारदीय तथा माण्डुकी शिक्षा।[२] इन शिक्षा ग्रंथों में प्राप्त उल्लेखों के अनुसार ज्ञात होता है कि वैदिक संगीत-शिक्षा भी विकास की पराकाष्ठा पर पहुँच चुकी थी। नारदीय शिक्षा की दृष्टि से स्वर के यथार्थ ज्ञान के लिये स्वरशास्त्र का ज्ञान अनिवार्य था। यद्यपि गान को वैदिक साहित्य में मुख्यतः मौखिक विधा माना है और गुरुमुख से ही इस विधा का ज्ञान प्राप्त करना श्रेष्ठ समझा गया है। इस प्रकार संगीत शिक्षा के लिये उसके क्रियात्मक और शास्त्र दोनों पक्षों को समान महत्व दिया गया है। क्योंकि गान-शास्त्र के बिना गान-विधा का केवल क्रियात्मक ज्ञान अपूर्ण और एकांगी माना गया है। इस प्रकार शिक्षा-वाङ्मय से स्पष्ट है कि प्रत्येक वेद की विभिन्न शाखाओं में सामगान की शिक्षा न्यूनाधिक मात्रा में प्रचलित थी।

तत्कालीन महिलाओं में संगीत-कला कौशल प्रचुर

---

१ 'भारतीय संगीत और संगीत शास्त्र', बां. गं. आचरेकर, पृ १८६-१८८

२ 'भारतीय संगीत का इतिहास', शरच्चंद्र परांजपे, पृ. १११

मात्रा में उपलब्ध होता है। अभिजात कुल की स्त्रियों में गान तथा वाद्य की शिक्षा दी जाती थी, जिससे वे साम गायकों की संगति सहज रूप से कर सकती थीं।

शैलुष, नट, नर्तक तथा बांस पर नृत्य करने वाले लोगों के उल्लेख से प्रतीत होता है कि उस समय भी नृत्य और नाटक की कला प्रचार में थी।

तत्कालीन वाद्यों में वीणा, शंख, वंशी, दुन्दुभी आदि अनेक वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है। इनमें तन्तुवाद्य, सुषिर-वाद्य, और अवनद्ध वाद्यों का प्रचलन उस काल में भी था यह ज्ञात होता है।

अतः वैदिक कालीन प्राप्त साहित्य और अन्य संकेत चिन्हों के आधार पर स्पष्ट होता है कि आज जो संगीत प्रचार में है उसका केवल स्वरूप परिवर्तित हुआ है उसका मूल रूप आज भी प्राचीन (वैदिक) युगीन संगीत में विद्यमान है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक युग में संगीत जीवन का अभिन्न अंग था। इसका प्रचार समाज के सभी वर्गों में प्रचुर मात्रा में दिखाई पड़ता है। मुख्य रूप से संगीत का प्रयोग धार्मिक-क्षेत्र में दिखाई देता है। परंतु लौकिक क्षेत्र में भी इसी काल से संगीत का प्रयोग प्रारंभ हो गया था; पर उसका आध्यात्मिक महत्व ही अधिक था।

2 प्राचीन काल — (वैदिक सांस्कृतिक परम्परा की धूमिलता के आरंभ और मुस्लिम आगमन तक का काल)

वैदिक काल के पश्चात् प्राचीन काल में भी संगीत कला के प्रचलन के उल्लेख प्राप्त होते हैं। तैतरीय उपनिषद, एतरेय उपनिषद, शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रंथों में संगीत कला विषयक तत्कालीन मार्गदर्शन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त याज्ञवल्क्य रत्नप्रदीपिका इस ग्रंथ में भी तत्कालीन संगीत कला के अनेक संकेत चिन्ह प्राप्त होते हैं। सांख्य प्रतिसांख्य इस ग्रंथ में भी तत्कालीन संगीत का परिचय होता है। हरिवंश पुराण में सप्तस्वर, ग्रामराग, सप्तक के तीनों स्थान,

मूर्च्छना, नृत्य, नाटक तथा वाद्यों का वर्णन है। वायु-पुराण में भी संगीत संबंधी जानकारी प्राप्त होती है।[१]

विख्यात इतिहासकार 'जीवोतन्यका' ने अपनी पुस्तक, 'The Depth of the Indian Culture' में लिखा है कि पौराणिक काल में जनता बैलगाड़ी की संगीतमयी स्पर्धा में भाग लेती थी। बैलों के गले में घुंघरू बाँधकर उन्हें गाड़ी में जोता जाता था इसीलिये यह स्पर्धा संगीतमयी कहलाती थी; इससे ज्ञात होता है कि संगीत का प्रयोग सार्वजनिक उत्सवों में पहले की अपेक्षा बढ़ गया था। इस युग में स्त्रियाँ संस्कृत मंत्रों का उच्चारण सुंदर ढंग से करती थीं। ये मंत्र वाद्यों की सहायता से गाये जाते थे। गायक श्रोताओं की रुचि जानते थे।[२]

मार्कण्डेय पुराण में षड्ज आदि सात स्वर पाँच प्रकार के राग, पांच प्रकार के गीत, मूर्च्छना, ४९ प्रकार की तानों, तीन ग्रामों का उल्लेख है। वीणा, पणव, मृदंग, देवदुन्दभी आदि वाद्यों का उल्लेख भी मिलता है।[३] प्राचीन काल को 'जातिगायन का कालखंड' भी कहा जाता है। अर्थात् इसी कालखंड से जातिगायन का प्रारंभ हुआ होगा। इस संबंध में 'श्रीमद्वाल्मीकिरामायण' में बालकाण्ड के चौथे सर्ग में उल्लेख प्राप्त होता है —

पाठ्यं गेयं च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम्।
जातिभिः सप्तभिर्बद्धं तन्त्रीलयसमन्वितम्॥

अर्थात् गायन मधुर होना चाहिये, तीन लयों (विलम्बित, मध्य, द्रुत) सात जातियों से युक्त, वीणा की लय के साथ मिला हुआ होना चाहिये।

महाभारत यह वेदव्यास द्वारा रचित ग्रंथ है। यह महाकाव्य बौद्ध काल के पूर्व लिखा गया था। इस युग में श्रीकृष्ण संगीत के महान् पंडित हो गये हैं। महाभारत इस ग्रंथ

---

१. भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, पृ. २६
२. वही " " " , " " , पृ. २४-२५
३. वही " " " , " " , पृ. ६३-२१

में जगह-जगह संगीत के उल्लेख मिलते हैं। इसी आधार पर इस काल में सप्तस्वरों का स्पष्ट प्रयोग प्राप्त होता है। अर्थात् षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम पंचम, धैवत निषाद आदि।१

इस प्रकार रामायण तथा महाभारत काल में संगीत संबंधी प्राप्त उल्लेखों के आधार पर निष्कर्ष प्राप्त होता है कि इन युगों में संगीत-कला का अत्यधिक प्रचार था; तथा वैदिक सामगायन पद्धति और लौकिक संगीत कला का समान रूप से प्रचलन था। यद्यपि वैदिक परंपरा से समृद्ध सामगायन का प्रचलन पहले की अपेक्षा कम हो गया था। लौकिक संगीत प्रायः 'गान्धर्व' नाम से व्यवहृत होता था, जिसमें कला तथा शास्त्र दोनों का अंतर्भाव था। नृत्य के अंतर्गत विविध हावभावों का प्रयोग होता था तथा गीत और वाद्य के साथ इनका संयुक्त प्रयोग लोकोत्सवों पर उल्लास की अभिव्यक्ति के लिये होता था। इन युगों में संगीत कला को जीवन का अवलंब बनाने के लिये कलाकारों को राज्य की ओर से आश्रय प्राप्त होता था। संगीत शिक्षा उस काल में भी गुरु शिष्य परंपरा द्वारा दी जाती थी इसके अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। बृहन्नलारूपधारी अर्जुन की नियुक्ति विराट की राजकन्या की संगीत शिक्षा के लिये की गयी थी।२

पाणिनी कालीन संगीत —

पाणिनी की अष्टाध्यायी संस्कृत का एक अमूल्य ग्रंथ है। इनका काल ८०० वर्ष ई. पूर्व माना गया है।३ यद्यपि यह एक व्याकरण प्रमुख ग्रंथ है फिर भी इसके आधार पर तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक परिस्थिति का विशेष परिचय मिलता है। इस ग्रंथ से तत्कालीन संगीत-कला-विषयक कुछ सूत्रों की भी प्राप्ति होती है।

पाणिनी ने इस ग्रंथ में कला के लिये 'शिल्प'

---

१ 'प्राचीन भारत में संगीत', धर्मा श्रीवास्तव, पृ. ६३-८१
२ 'भारतीय संगीत का इतिहास', शरच्चंद्र परांजपे पृ. १६३
३ 'भारतीय संगीत का इतिहास', उमेश जोशी पृ. ११६

शब्द का प्रयोग किया है।[1] तथा शिल्प के अंतर्गत आने वाली कलाओं का विभाजन पाणिनी ने 'चारु' तथा 'कारु' दो विभागों में किया है।[2] चारु शिल्प के अंतर्गत संगीतादि ललित कलाओं को रखा है तथा 'कारु' के अंतर्गत वास्तुकला को रखा है।[3] इस काल में गीत, वाद्य, नृत्य के साथ ही नाट्य के सामुहिक कार्यक्रम हुआ करते थे।[4] अतः जनरुचि समर्पित सुगम संगीत का प्रचार अधिक हो रहा था; पर साथ ही साम-संगीत भी यज्ञअनुष्ठानों द्वारा अपनी उच्चता पर पहुँचा था।[5] स्त्रियों भी संगीत गोष्ठियों में पुरुषों के बराबर ही भाग लेती थीं।[6] इस युग में चारों वर्णों की एक धारा नहीं रही थी; ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय तीनों वर्ग मिलकर अपने अलग-अलग उत्सव मनाते थे तथा शूद्रों के उत्सवों की व्यवस्था पृथक् थी, यद्यपि यह पृथकता अधिक नहीं बढ़ी थी।[7]

निष्कर्ष यह कि पाणिनी युग में संगीत कला समाज में इतनी अधिक प्रिय थी कि व्याकरणशास्त्री पाणिनी के लिये भी इसका उल्लेख करना आवश्यक हो गया था।

बौद्ध तथा जैन काल –

डेढ़ या दो हजार वर्ष तक वैदिक संस्कृति और धर्म का बोल-बाला रहा और ब्राह्मणों ने तत्कालीन भारतीय समाज को जाति-पाँति के तथा कर्मकाण्डों के कड़े बंधनों में बाँधने का प्रयास किया जिससे साधारण जनता त्रासित हो गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मणों, यज्ञों तथा

---

१ भारतीय शास्त्रीय संगीत का इतिहास, शरच्चंद्र परांजपे, पृ० १६६
२ वही " " " " , " " , " "
३ वही " " " " , " " , " "
४ वही " " " " , " " , पृ० १६९
५ भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, पृ० ११६
६ वही " " " , " " , पृ० ११६
७ वही " " " , " " , पृ० ११६

वर्णाश्रम - धर्म का विरोध होने लगा। इस समय गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी ने वैदिक दोषों को दूर कर जनता की समझ में आने वाली सरल धर्म प्रणाली का प्रतिपादन किया और ये ही धर्म प्रणालियाँ जैन और बौद्ध धर्म के रूप में प्रचारित हुईं इसके प्रभावस्वरूप इस काल में यज्ञों के अनुष्ठानों में कमी दिखाई पड़ती है तथा साम-गायन का भी उतना महत्व नहीं दिखाई पड़ता है। इस काल में बौद्धों के आध्यात्मिक गीतों का संकलन बौद्ध भिक्षुकों और भिक्षुणियों के द्वारा रचित ग्रंथों में प्राप्त होता है।[1] इसमें ५२२ आध्यात्मिक गीतों का संकलन है।[2] इन गीतों के लिये डा. वितर्नीज ने कहा है कि, "ऋग्वेदीय ऋचाओं से लेकर कालीदास और अमरु के गीति काव्यों तक, इस समस्त प्रसार में, अपनी शक्ति और सौन्दर्य में, ये गीत किसी रचना से नीचे न पड़ेंगे।"[3] इसी प्रकार जैन - काल में जैन आगमों का प्रचार करने के लिये, 'चलित' नामक गीतों का प्रयोग किया गया।[4] इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में धर्म-प्रचार का कार्य संगीत कला के द्वारा किया गया इससे प्रतीत होता है कि संगीत में ऐसी शक्ति है जो जनसाधारण में किसी भी सिद्धांत, मान्यता, विश्वास को आसानी से प्रतिस्थापित कर सकती है।

आध्यात्मिक संगीत के साथ-साथ इन दोनों ही कालों में उत्सवों पर लोक मनोरंजन के लिये स्थान - स्थान पर गीत वाद्य तथा नृत्य की संगति के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त वाद्यों में तन्तु - वाद्य, सुषिर वाद्य, तथा अवनद्ध वाद्यों के अनेक प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं।[5] जैनियों के ग्रंथ ठाणांग सूत्र में स्वरों की उत्पत्ति, सप्त स्वरों का प्राणियों की

---

१ भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, पृ. १३५
२ वही " " " , " " , पृ. १३५
३ वही " " " , " " , पृ. १३५
४ भारतीय संगीत का इतिहास, शरच्चंद्र परांजपे, पृ. १२१
५ वही " " " , " " , पृ. १२५

ध्वनि से संबंध, ग्राम तथा मूर्च्छनायें, गीत के गुण दोषों आदि का विवरण पाया जाता है।[1] जैन तथा बौद्ध ग्रंथों और शिलालेखों में प्राप्त उल्लेखों के आधार पर स्पष्ट होता है कि उस काल में भी संगीत परम्परा मुख्य रूप से संस्कृत ग्रंथों की अनुगामिनी रही है। दोनों ही कालों में संगीत कला को राज्याश्रय प्राप्त था। कला-निपुण व्यक्तियों को राज्यसभा में उचित वेतन पर नियुक्त किया जाता था। और कला निपुण कलाकारों की प्रतियोगितायें भी हुआ करती थीं। तत्कालीन सम्पन्न परिवारों में संगीत का अध्ययन होता था। राजघरानों के सदस्यों का संगीत कला में प्रवीण होना आवश्यक था। विभिन्न उत्सवों के अवसर पर नागरिक तथा ग्रामीण जनता में गीत-नृत्यादि कार्यक्रमों का आयोजन प्रचुर मात्रा में होता था। नागरक के लिये सुन्दर वस्त्र, आभूषणों आदि के साथ संगीत भी आवश्यक अंग माना जाता था। अतः इससे स्पष्ट होता है कि इस काल में संगीत कुछ-कुछ विलासिता की ओर बढ़ने लगा था।

इन कालों में संगीत-कला की शिक्षा की पर्याप्त तथा समुचित व्यवस्था थी। बौद्ध काल में तक्षशिला, वाराणसी, उदन्तपुरी जैसे विश्वविद्यालय विद्यादान के प्रमुख केन्द्र थे इनमें अध्ययन के लिये स्वतंत्र निकाय अथवा फैकल्टी थी।[2]

'भरतकाल'

संगीत के इतिहास में ईसा के पश्चात् द्वितीय शताब्दी एक आलोक स्तम्भ है। अब तक तो इतिहास में भारतीय संगीत के विषय में यत्र-तत्र उपलब्ध संकेतों, चिन्हों तथा उल्लेखों के आधार पर ही अनुमान लगाया था पर इस शताब्दी में रचित 'नाट्यशास्त्र' में हमें संगीत विषयक ठोस सिद्धांत प्राप्त

---

१ भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, पृ. १०३

२ भारतीय संगीत का इतिहास, शरच्चंद्र परांजपे, पृ. १६१

होते हैं।[1] नाट्यशास्त्र के रचयिता भरतमुनि हैं। नाट्य शास्त्र अपने कुल ३८ अध्यायों में से २८ से ३३ इन छः अध्यायों में विशुद्ध संगीत संबंधी सामग्री प्रदान करता है ये सामग्री प्राचीन तथा प्रामाणिक भी है। महत्व की बात यह है कि भारत की प्राचीन संगीत-कला तथा उसके सिद्धांतों पर प्रकाश डालने वाला यही एकमात्र ग्रंथ है; तथा इसी के द्वारा बनायी परंपरा का परिपालन समस्त भारतवर्ष में आज भी किया जाता है। २८ वाँ अध्याय स्वरशास्त्र की दृष्टि से अत्यंत महत्व का है। इस अध्याय में स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना, षड्ज तथा मध्यम ग्राम, मूर्च्छना के नाम, काकुभेद, षटअलंकार, और उनके प्रयोग, जाति, जातिभेद, वादी-संवादी, अनुवादी-विवादी, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व-बहुत्व, ताल, गायक-वादकों के गुण-दोष, शिक्षकों तथा शिष्यों के गुण, कंठ स्वर के गुण, पुरुष और स्त्री गायन तथा पाठ की भिन्नता, संगीत-शिक्षा आदि पर विशेष प्रकाश डाला गया है। भरतकालीन इन्हीं सिद्धांतो को आज भी हम संगीत क्षेत्र में प्रचार में देखते हैं, यद्यपि उनमें कालक्रम के अनुसार काफी परिवर्तन हुआ है पर फिर भी यदि उन्हें इमारत की नींव कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।

भरत-काल में संगीत चरमोत्कर्ष पर था। भरत ने 'गांधर्व' को भी वेदों से संबंधित कर इसकी स्थिति और भी उच्च कर दी थी। संगीत में शास्त्रीय सैद्धांतिक विकास के विषय में यह काल सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। इस काल में जो भी सिद्धांत थे वे इतने सुविकसित और क्रमबद्ध थे कि आगे परवर्ती ग्रंथकारों ने उन्हें ही उतार दिया। परिवर्तन या विकास हुआ भी तो अत्यंत अल्प मात्रा में। इस काल में शिक्षालयों के माध्यम से संगीत-शिक्षा प्रदान की जाने लगी थी अतः संगीत का व्यवहारिक विकास भी इस युग में प्रचुर मात्रा में हुआ। स्मृतिकार जैसे कट्टर ब्राह्मण ने भी

---

१ प्राचीन भारत में संगीत, डा. धर्मावती श्रीवास्तव पृ. १२५

संगीत को श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया। शास्त्रीय संगीत कहीं भी हेय नहीं माना गया; वेश्या वर्ग द्वारा शास्त्रीय रीति से प्रदर्शित संगीत को हेय न मानकर उसे भी समाज में उच्च स्थान दिया गया था। इस काल के उत्सवों के सम्मिलित प्रयासों को देखते हुये यह निष्कर्ष उचित प्रतीत होता है कि संगीत किसी न किसी रूप में समाज के सभी वर्गों में प्रचारित हो चुका था।

इसके पश्चात् भारतीय इतिहास के युग में ३२१ ई. पूर्व[1] से ६४६ ई.[2] तक अनेक वंशों का शासन भारत की राजगद्दी पर हुआ इनमें मौर्य-वंश, शुंग-वंश, कनिष्क-वंश, नाग-वंश, गुप्त-वंश, हर्षवर्धन-काल प्रमुख हैं। इन सभी वंशों में समय-समय पर अनेक उत्तराधिकारी राजगद्दी पर विराजमान हुये और सभी ने राज्य के विभिन्न अंगों के विकास के साथ संगीत के विकास पर भी पर्याप्त ध्यान दिया। परंतु इन वंशों के शासनकाल में गुप्त-वंश का शासन काल हर दृष्टि से भारतीय संस्कृति के विकास का स्वर्ण-युग माना गया है। अतः सांगीतिक विकास की दृष्टि से गुप्त-कालीन प्राप्त उल्लेखों का विवेचन करना आवश्यक है।

'गुप्त काल में संगीत'

गुप्त कालीन संगीत के दृश्य चित्र अजन्ता के भित्तिचित्रों में उपलब्ध होते हैं।[3] इनके अतिरिक्त इस काल के संगीत का उल्लेख संगीत ग्रंथ बृहद्देशी में विस्तृत रूप से पाया जाता है। इसके अतिरिक्त उस काल में रचित कालिदास, भास, एवं शूद्रक के नाटकों में भी उस काल के संगीत के संबंध में उल्लेख प्राप्त होते हैं। इस काल का संगीत ग्रंथ मतंगकृत बृहद्देशी भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यद्यपि इसके भी

---

१ भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, पृ. १३५
२ वही " " " , " " , पृ. १८०
३ भारतीय संगीत का इतिहास, शरच्चंद्र परांजपे, पृ. १२१

कई अंश खंडित हैं, जो आज अप्राप्य हैं। "बृहद्देशी में रागाध्याय, स्वराध्याय, एवं प्रबंधाध्याय ही प्राप्त होते हैं। मतंग ने भरत के अनुसार ही अलंकारादि, चतुःसारणा, स्वर, श्रुति, ग्राम, मूर्च्छना आदि विषयों का निरूपण अपने ग्रंथ में किया है।

भरत से भिन्न जो विषय इसमें उल्लिखित हैं वे इस प्रकार हैं— गांधार ग्राम का उल्लेख, द्वादश स्वर, मूर्च्छना पद्धति, ८४ मूर्च्छना तानों का यस नामों के साथ संबंध जोड़ा है, रागों तथा देशी रागों का वर्णन महत्व का है परंतु रागाध्याय खंडित है। प्रबंधाध्याय के अंतर्गत नाट्य की ध्रुवाओं के स्थान पर स्वतंत्र संगीत की बंदिशों का उल्लेख है।"[1]

इस प्रकार इस काल में संगीत के सैद्धांतिक पक्ष और व्यवहारिक पक्ष दोनों का उत्थान समान रूप से होता दिखाई पड़ता है; तथा गायन, वादन, नृत्य संगीत की सभी विधाओं के लौकिक पक्ष का भी विकास प्रचुर मात्रा में दिखाई पड़ता है।

गुप्त वंश की स्थापना ३२० ई. में सर्वप्रथम चंद्रगुप्त प्रथम ने की।[2] चंद्रगुप्त प्रथम के काल में संगीत की उन्नति विशेष रूप से होने का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। संभवतः इसका कारण यह रहा होगा, कि चंद्रगुप्त प्रथम का अधिकांश समय अपने साम्राज्य की स्थापना करने की योजनाओं और राज्य की सीमाओं का विस्तार करने के कारण युद्धों में बीता होगा।

चंद्रगुप्त प्रथम के उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त तथा उसके बाद चंद्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) के शासन काल में संगीत की उन्नति के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। गुप्त काल में संगीत की उन्नति के विषय में मिस्टर प्रोलेनियर ने अपनी पुस्तक, "The mirror of Music India" में लिखा है कि, "समुद्र-गुप्त स्वयं महान् संगीत प्रेमी था वह घंटों वीणा-वादन

---

१ 'भारतीय संगीत का इतिहास' उमेश जोशी, पृ. १६४

२ भारतीय संगीत का इतिहास, भगवतशरण शर्मा, पृ. ४१

किया करता था। समय-समय पर उसके राज्य में संगीत के आयोजन होते थे। उनके दरबार में अनेक संगीतज्ञ थे।[1] गायन कला की समुद्रगुप्त के समय में बड़ी उन्नति हुई। इस युग में कलाकारों ने अपनी उत्कृष्ट गायन-साधना द्वारा अपनी संगीत-कला में, गायन द्वारा पानी बरसाने, पत्थरों को पिघलाने जैसी चमत्कारिक शक्तियाँ प्राप्त कर लीं थीं। इस काल में कला की एक मुख्य विशेषता यह थी कि, इस काल में संगीतज्ञ की कसौटी उसकी कला शिल्पज्ञता न होकर उसका चरित्र था।[2] इस काल में लोगों का दृढ़ विश्वास था कि श्रेष्ठ चरित्र कला की प्राणशक्ति है इसके बिना कोई भी कला विकास के स्वर्ण-युग को प्राप्त नहीं कर सकती। टर्की के एक ग्रंथ 'सेजरुल उकोल' में उल्लेख है कि वे लोग धन्य हैं जो राजा विक्रमादित्य के राज्य में रहते हैं, जो बड़ा दानी, धर्मात्मा प्रजापालक और इल्मे मौसिकी (संगीत) का ज्ञाता है ---- उसने हम विदेशियों को भी अपनी दया दृष्टि से वंचित नहीं रखा और पवित्र धर्म का संदेश और अपनी कला और संस्कृति का परिचय देने अपने देश के विद्वानों को यहाँ भेजा, जो हमारे देश में सूर्य के समान चमकते थे।"[3] इससे स्पष्ट होता है कि सितार का जन्म गुप्त-काल में हो चुका था। समुद्रगुप्त की मृत्यू के पश्चात उनके पुत्र चंद्रगुप्त द्वितीय ३६५ ई. से ३८० ई. के बीच किसी समय सिंहासनारूढ़ हुये।[4] एक स्थापित साम्राज्य की उन्नति करने में चंद्रगुप्त को किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई। उन्होंने साम्राज्य की सांस्कृतिक उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया। डा. सुरेशव्रत राय ने भी अपनी पुस्तक, 'संगीत के जीवन पृष्ठ' में उल्लेख किया है कि चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में रागों का प्रयोग

---

१ भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, पृ. १६१
२ भारतीय संगीत का इतिहास, भगवतशरण शर्मा पृ. ४२
३ वही पृ. ४३
४ वही पृ. ४३

होता था। उन्होंने तो यहाँ तक कहा कि छः रागों और अनेक रागिनियों का जन्म इस काल में हो चुका था इसके अतिरिक्त पुत्र-राग और पुत्रवधु-राग की भी कल्पनायें इस काल तक हो चुकी थीं'।[१] इस काल के भारतीय संगीत का विदेशों में भी खूब प्रचार तथा प्रसार हुआ।[२] चीनी यात्री फाह्यान ने गुप्त साम्राज्य के संगीत के विषय में लिखा है कि इस काल में नृत्य और संगीत अपने चरमोत्कर्ष पर था।[३] इस काल के प्रसिद्ध कवि कालीदास के नाटकों में भी यत्र-तत्र नृत्य-संगीत के आयोजनों का उल्लेख इस काल में संगीत के महत्व को दर्शाता है।[४] अपनी पुस्तक, 'दि लाइट ऑफ इन्डियन म्यूज़िक' में डा. विलियोर्कवाना लिखते हैं, "इस काल में संगीत और कला के जितने विद्वान हुये उतने और किसी काल में नहीं।"[५] बुलड़ोगइल्सा ने अपनी पुस्तक, 'दि ऐसेन्स ऑफ इन्डियन म्यूज़िक' में लिखा है कि, 'मैं गुप्त काल को संगीत का स्वर्ण-युग इसलिये मानता हूँ कि इस काल की साधारण जनता का साहित्य और कला को समझने का स्तर इतना उच्चकोटि का था जो आज प्रगतिशील एवं उच्च शिक्षित वर्ग में भी नहीं पाया जाता।"[६]

आम जनता को सांस्कृतिक विकास के इस स्तर तक लाने के लिये गुप्त काल में अवश्य ही प्रयास किया गया होगा। गुप्त वंश का यह सौभाग्य रहा कि उसके युग में सभी विषयों के प्रकाण्ड विद्वान हुये; जिनके योग्य संरक्षण में जनता विकास की ओर बढ़ती रही। इसके अतिरिक्त एक कारण यह भी रहा कि इस काल में जनता आर्थिक चिन्ताओं से

---

१ 'संगीत के जीवनपृष्ठ', डा. सुरेशव्रत राय, पृ. ६६
२ भारतीय संगीत का इतिहास, भगवतशरण शर्मा, पृ. ४४
३ वही " " " , " " , पृ. ४४
४ वही " " " , " " , पृ. ४५
५ वही " " " , " " , पृ. ४६
६ 'भारतीय संगीत का इतिहास', उमेश जोशी , पृ. १५६

मुक्त थी, हर चीज सुविधापूर्ण थी, देश धन-धान्य से पूर्ण था। सामान्य प्राणियों का जीवन सुखमय हो रहा था, इस कारण प्रत्येक प्राणियों को आत्मचिन्तन करने का सुअवसर मिल जाया करता था। इसीलिये इस युग में सभी कलायें उन्नति के चरम उत्कर्ष पर पहुँची। इनमें संगीत कला के उत्कर्ष का भी गुप्त युग स्वर्ण-युग माना गया है।

२ मध्य-काल अथवा मुगल-काल (८वीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक राजपूत-काल से मुगल-काल के अंत तक का काल)

इतिहासकारों के अनुसार मुगलों का आगमन भारत में ११ वीं शताब्दी में हुआ। हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात भारतवर्ष में ऐसा कोई भी प्रतापी शासक नहीं हुआ जो भारत को एक सूत्र में बाँधकर रख सकता। फलस्वरूप समस्त देश छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटकर रह गया, जिनमें परस्पर एकसूत्रता नहीं रही। प्रत्येक वर्ग और टुकड़ा स्वयं को महत्व देता था, और इनके वंशज स्वयं को प्राचीन क्षत्रियों का वंशज मानते थे; इनमें परस्पर फूट पड़ गयी थी। ये लोग एक दूसरे को नीचा दिखाने में, युद्ध में रत रहते थे। इनका अधिकांश समय युद्ध में ही व्यतीत होता था। इनकी फूट देखकर ही विदेशियों ने देश पर आक्रमण करने शुरू कर दिये, जिससे देश की प्रशासनिक और आर्थिक व्यवस्था सुदृढ़ न रह सकी। इस युग की राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक दशाओं का प्रभाव संगीत कला पर भी पड़े बिना न रहा। परंतु इस काल में संगीत कला को राज्याश्रय नहीं प्राप्त था यह भी नहीं कहा जा सकता पर वह जितना होना चाहिये वह नहीं था। कलाकार भी एक दूसरे को तुच्छ समझते थे और संगीत अनेक वर्गों में विभक्त हो गया था। और प्रत्येक वर्ग अपनी इच्छा के अनुसार संगीत का विकास करने लगा। कलाकारों की संकीर्ण मनोवृत्ति के परिणाम स्वरूप संगीत घरानों के बंधनों में

जकड़ने लगा। अब तक जो संगीत ईश्वर को प्रसन्न करने का साधन माना जाता था अब राजा को प्रसन्न करने का साधन माना जाने लगा। इन युगीन परिस्थितियों के कारण संगीत के आत्मिक सौन्दर्य की अपेक्षा कलाकार उसकी शिल्पपरता पर अधिक ध्यान देने लगे और संगीत में शृंगारिकता का प्रवेश इस युग में होने लगा; उसका सम्पर्क साधारणजन से छूटने लगा। संगीत के विकास के लिये इस युग में इतनी विरोधी परिस्थितियाँ होने पर भी अनेक संगीत ग्रंथ इस युग में लिखे गये हैं जो इस प्रकार हैं — लोचनकृत, 'रागतरंगिणी' यह ग्रंथ पूर्णतः संगीत के सिद्धांतो पर लिखा गया ग्रंथ है।[1] इसके अतिरिक्त जयदेव ने संगीतमय गीति-काव्य 'गीतगोविन्द' की रचना की।[2] इसके अतिरिक्त भावभूति, राजशेखर ने अनेक संगीतमय नाटकों की रचना इसी युग में की।[3]

इसवी सन् १००१ से १०३० में मुहम्मद गजनी ने भारत पर उत्तर की ओर से आक्रमण किया वह भारत में लूटपाट मचा कर विनाश की आँधी उड़ाकर वापस चला गया। फिर पृथ्वीराज और जयचंद के काल में मुहम्मद गौरी का आक्रमण भारत पर हुआ। और तभी से मुसलमान भारत में स्थायी होने लगे। कुतुबुद्दीन एबक और सैय्यद लोदी ने उत्तर में राज्यों की स्थापना की। इस प्रकार भारत में ईसवी सन् ११९१ से १५२६ का यह बड़ा कालखंड अशांतता में बीता जिसके परिणाम स्वरूप अन्य कलाओं के साथ-साथ संगीत कला की भी प्रगति रुक गयी।

इस काल में भी दक्षिण-भारत इन विनाश-

---

१ भारतीय संगीत के जीवनपृष्ठ, डा. सुरेशव्रतराय, पृ. ६६
२ भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, पृ. १९१
३ वही " " " , " " , पृ. १९१

कारी तथा अशांत परिस्थितियों से अछूता शांत वातावरण में था। अतः उत्तर भारत के विद्वानों ने त्रसित होकर आश्रय ग्रहण करने की दृष्टि से दक्षिण भारत की ओर प्रस्थान किया।

इसी समय पंडित शार्ङ्गदेव के पितामह भास्कर ने कश्मीर छोड़ा और दक्षिण के देवगिरी में आश्रय ग्रहण किया। शार्ङ्गदेव के पिता सोढ़ल का जन्म यहीं हुआ वे दक्षिण के यादव नरेश भिल्लम के राजदरबार में आश्रय ग्रहण करके रहने लगे। आगे ईसवी सन् 1210 से 1216 इस काल में पंडित शार्ङ्गदेव भिल्लम के पुत्र सिंहण की राज्य-सभा में विद्वान नियुक्त हुये। इसी काल में 13 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पंडित शार्ङ्गदेव ने, 'संगीत रत्नाकर' ग्रंथ लिखा। 'संगीत रत्नाकर' यह ग्रंथ भारतीय संगीत और शास्त्र पर एक प्रामाणिक ग्रंथ माना गया है। इस ग्रंथ में श्रुति, नाद, स्वर ग्राम, मूर्च्छना, जाति, ग्रामराग, गायकों के गुण दोष, प्रबंध, धातु, नृत्य, नाट्य की विस्तृत चर्चा की है। आज भी उत्तर और दक्षिण भारत के विद्वान 'संगीत रत्नाकर' को आधार ग्रंथ मानते हैं।

इस प्रकार दक्षिण में शांत परिस्थितियों के कारण यहाँ गायन वादन तथा नृत्य तीनों ही कलाओं की उन्नति हुई पर बाद में मुसलमानों ने देवगिरी और विजयनगर राज्यों पर भी आक्रमणों की शुरुआत की परिणामस्वरूप लोगों का जीवन कष्टमय हो गया और संगीत कला का विकास फिर अवरुद्ध हो गया।

13 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आलाउद्दीन खिलजी ने दिल्ली में शासन स्थापित किया उसके काल में संगीत कला फिर उन्नति की ओर अग्रसर होने लगी। आलाउद्दीन खिलजी के दरबार में अमीर खुसरो नामक उत्तम संगीतज्ञ विद्वान हुआ। सुल्तान के संगीतप्रेमी होने के कारण खुसरो को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। फलस्वरूप खुसरो ने भारतीय संगीत में अनेक फेरबदल किये। इसी

समय से भारतीय संगीत दो धाराओं में विभक्त होता दिखाई देता है। मुसलमानों ने शासन मुख्यत: उत्तर भारत में रखा। परिणामस्वरूप पर्शियन संगीत और भारतीय संगीत के परस्पर आदान-प्रदान के कारण आज की उत्तर भारतीय संगीत पद्धति प्रचार में आयी। दक्षिण में मुसलमानों का इतना प्रभाव न होने के कारण वहाँ के संगीत पर भी मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव कम पड़ा और वहाँ की संगीत पद्धति परिणामस्वरूप आज हमारे सामने दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति के रूप में है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि अमीर-खुसरो के काल से ही भारतीय संगीत में दो पद्धतियों के अस्तित्व का उदय हुआ।

अमीर खुसरो का जन्म ईसवी सन् १२५३ में हिन्दुस्तान में हुआ। खुसरो ने गयासुद्दीन बल्बन के दरबार में नौकरी की। कुछ वर्षों पश्चात् बल्बन घराने का अचानक लोप हो गया तथा खिलजी वंश का आधिपत्य दिल्ली में हुआ तब अमीर खुसरो अलाउद्दीन का दरबारी नियुक्त हुआ।[1]

अलाउद्दीन खिलजी ने १२९४ में देवगिरी पर[2] आक्रमण कर दिया। उस वक्त अमीर खुसरो भी उसके साथ था। खिलजी ने देवगिरी के यादव वंश का नाश करके दिल्ली वापस आने के समय यादवों के दरबारी गायक विद्वान गोपाल नायक को दिल्ली साथ लाया। वहाँ अमीर खुसरो ने गोपाल नायक का गायन सुनकर भारतीय संगीत में पर्शियन संगीत का मिश्रण करके भारतीय संगीत में अपूर्व क्रांति उत्पन्न की और एक नये ही संगीत का प्रचार किया। दक्षिण के शुद्ध स्वर-सप्तक से अलग एक नये ही शुद्ध स्वर-सप्तक की रचना की। अत: आज जिसे उत्तर हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति कहते हैं; उसका जन्मदाता, प्रवर्तक, तथा प्रस्थापक अमीर खुसरो ही था।

भारतीय संगीत में उस समय सात शुद्ध

---

१ उमेश जोशी, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ. १२६.
२ वही , " " " " पृ.१२९

तथा सात विकृत स्वर थे। उसमें शुद्ध ऋषभ तथा शुद्ध धैवत में विकृति नहीं है यह अमीर खुसरो की समझ में आने पर उसने स्वर ध्वनि में परिवर्तन न करके स्वरों के नाम में परिवर्तन किया। उनके द्वारा स्वरों के नये नाम दिये जाने के कारण उसका शुद्ध स्वरों का सप्तक आज के काफी ठाठ जैसा था। यह शुद्ध सप्तक १८ वीं सदी के उत्तरार्द्ध तक प्रचार में था। खुसरो द्वारा निर्मित राग — जीलफ, साजगिरि, सरपर्दा, यमन, रात की पूरिया, बरारी, तोड़ी, पूर्वी आदि।[१]

ताल :- झूमरा, आड़ा चौताल, सूलफाक, पश्तो, फरोदस्त, सवारी आदि।[२]

सबसे अधिक महत्व की बात यह है कि उसने उस समय की अनेक प्रकार की प्रचलित गायन शैलियों की विशिष्टता और सौन्दर्य का एकत्रीकरण करके ख्याल-गायकी का निर्माण किया। साथ ही गज़ल, कव्वाली, तराना, खमसा आदि गायन शैलियों के निर्माण का श्रेय भी खुसरो को ही जाता है।[३]

खुसरो ने हिन्दुस्तानी संगीत में नये विचार तथा कल्पनाओं का सृजन किया। उसने हिन्दुस्तानी गायन पद्धति और पर्शियन संगीत पद्धति दोनों का मिश्रण किया; और भारतीय संगीत पर फारसी साज चढ़ाया। इस प्रकार इस काल में भारतीय संगीत में काफी परिवर्तन हुये।

१४ वीं शताब्दी में लोचन कवि ने, 'राग-तरंगिणी' ग्रंथ की रचना की इसी समय पंडित चतुर कल्लिनाथ ने, 'संगीत रत्नाकर' ग्रंथ पर टीका लिखी।[४]

१५ वीं शताब्दी में जौनपुर का सुल्तान हुसैन शर्की भी संगीतप्रिय था। उसने ख्याल गायकी को

---

१ संगीत विशारद, पृ. २८

२ वही " , पृ.२८

३ वही " , पृ.२८

४ 'भारतीय संगीत का इतिहास, उमेश जोशी, पृ. १८५

लोकप्रिय करने के अनेक किये।[1] इसी समय पंडित रामामात्य ने, 'स्वरमेल कलानिधि' ग्रंथ की रचना दक्षिणी संगीत पद्धति पर की।[2]

मुगल बादशाह बाबर और उसका पुत्र हुमांयू भी संगीतप्रिय थे परंतु अस्थिर राजकीय परिस्थिति के कारण उस समय संगीत कला की प्रगति न हो सकी। इसी समय अर्थात् बाबर के सत्ता में आने के पहले ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने संगीत की उन्नति में यथेष्ट योगदान दिया। उनके दरबार में अनेक गायक-वादक थे। इन्होंने मुख्यत: ध्रुपद तथा धमार शैलियों को प्रोत्साहन दिया।

१६ वीं शताब्दी में अकबर गद्दी पर बैठा। वह अत्यधिक संगीतप्रिय बादशाह था। उसके काल में संगीत को राज्याश्रय मिला। इस काल में प्रसिद्धि पाने वाले कलाकारों में तानसेन, नायक बैजू, रामदास, गोपाल नायक, शौरसेन थे। अकबर स्वयं भी संगीतज्ञ था। संगीत कला के अतिरिक्त उसके शासन-काल में चित्रकला, वास्तुकला, साहित्य आदि सभी कलाओं की उन्नति हुई।

इस काल में दक्षिण और उत्तर-भारत के संगीत में अंतर स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगा था। उत्तर-भारत में होने वाले परिवर्तनों के संबंध में भातखण्डेजी का कहना है, "मैं इसे अस्वीकार नहीं करूँगा कि उत्तरी संगीत में उस समय कुछ अतिआवश्यक परिवर्तन हुये और विदेशी प्रभाव से हमारे संगीत को पर्याप्त लाभ हुये।"[3] अत: यह मान्यता निराधार लगती है कि मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव से भारतीय संगीत पूर्णत: पतन की ओर अग्रसर हुआ। यदि निष्पक्ष भाव से कहा जाय तो; भारतीय संगीत ने अपने स्वरूप को सुरक्षित रखकर जो परिवर्तन उस काल में स्वीकार किये उन्होंने उसे

---

1 संगीत विशारद, पृ. 26
2 'भारतीय संगीत का इतिहास' उमेश जोशी पृ. १०६
3 A Short Historical survey of the music of India, भातखण्डे, पृ. २३६.

शैलीगत सौन्दर्य ही प्रदान किया। इस सम्बन्ध में नलिन गांगुली की उक्ति ठीक प्रतीत होती है — "ध्रुपद को ही ख्याल में परिवर्तित किया गया है। लेकिन ख्याल के सरगम मूल रूप में वही हैं जो कि ध्रुपद के।"[1] अतः परिवर्तनों के बाद भी हमारा संगीत पूर्णतः नहीं बदला है। इस प्रकार मुस्लिम संस्कृति के प्रभाव स्वरूप भारतीय संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों के कारण अकबर-काल में भारतीय संगीत स्पष्ट रूप से दो धाराओं में विभक्त हो गया था; प्रथम दक्षिण भारतीय संगीत द्वितीय उत्तर भारतीय संगीत।

अकबर के काल में चार शैली अथवा चार बानियों का निर्माण हो चुका था; खंडार-बानी, नोहार-बानी, डागुर-बानी, गौड़ी-बानी। इन चारों ही बानियों के प्रवर्तक अकबर के दरबार में थे। तानसेन की गौड़ी-बानी, ब्रजचन्द की डागुर बानी, राजा सम्मोखन सिंह की खंडार-बानी तथा श्री चंदजी की नोहार-बानी।[2]

अकबर के समय में ध्रुपद-गायन उच्च शिखर पर था। तानसेन ने रबाब नामक वाद्य का निर्माण किया और अनेक नवीन रागों का भी निर्माण किया। इस काल में सूर, मीरा, तुलसी कबीर ने अनेक भक्ति गीतों की रचना की जिससे समाज में एक भक्तिपूर्ण वातावरण का निर्माण हुआ।

संगीत के कलात्मक स्वरूप और शास्त्र की जानकारी हो और सुरक्षा हो इस उद्देश्य से अकबर के काल में पंडित पुंडरीक विट्ठल ने, 'सद्राग चंद्रोदय', 'रागमाला', 'रागमंजरी', 'नर्तन निर्णय' इन ग्रंथों की रचना की।[3]

अकबर के बाद जहाँगीर और शाहजहाँ के शासन काल में भी संगीत-कला को राज्याश्रय मिला। इस काल में

---

१ 'भारतीय संगीत का इतिहास', उमेश जोशी, पृ. २१५

२ 'संगीत बोध' शरच्चंद्र श्रीधर परांजपे, पृ. ११९

३ 'भारतीय संगीत का इतिहास', उमेश जोशी पृ. २३०

सोमनाथकृत, 'रागविबोध', हृदयनारायण कृत, 'हृदयप्रकाश', दामोदर-कृत, 'संगीत दर्पण', अहोबलकृत, 'संगीत पारिजात' आदि ग्रंथ लिखे गये।[१] इस समय दक्षिण में पंडित व्यंकटमुखी ने, 'चतुर्दंडी प्रकाशिका' इस ग्रंथ की रचना की और १२ स्वरों के सप्तक से ६२ थाटों की रचना हो सकती है यह सिद्ध किया।

शाहजहाँ के बाद औरंगज़ेब गद्दी पर बैठा औरंगज़ेब के लिये अनेक इतिहासकारों ने इसी तथ्य की पुष्टि की है कि वह पूर्णतः सांगीतिक रुचि रहित बादशाह था उसे संगीत से अत्यधिक घृणा थी। इस विषय पर भातखण्डे जी ने लिखा है, "मुसलमान पैगम्बरों के आदर्श पर औरंगजेब ने संगीत और नृत्य को नष्ट करने की पूरी ताकत से कोशिश की।"[२] अतः इस काल में संगीत की प्रगति रुक गयी फिर भी सांगीतिक रुचि सम्पन्न उच्चकोटि के संगीतज्ञों ने संगीत ग्रंथों की रचना की। इनमें पंडित भावभट्ट ने, 'अनूप संगीत रत्नाकर', 'अनूपांकुश', और 'अनूपविलास' ये तीन ग्रंथ लिखे। पंडित श्रीनिवास ने, 'रागतत्व-विबोध' ग्रंथ की रचना की।[३]

इसके बाद मुहम्मदशाह 'रंगीले' संगीत का शौकीन बादशाह मुगल वंश में हुआ। राजा एम. एम. ठाकुर के अनुसार, "मुहम्मद शाह रंगीले के दरबार में प्रसिद्ध संगीतज्ञों को आश्रय मिला। आज भी अनेक गीत रचनाओं में उनके नाम का उल्लेख प्राप्त होता है। इस सम्राट के दरबार में प्रसिद्ध ख्याल रचनाकार सदारंग और अदारंग थे। शोरी मियाँ ने टप्पा गायकी का निर्माण तथा प्रचार किया।[४] मुहम्मद शाह के पश्चात मुगल वंश में अंतिम बादशाह बहादुर

---

१ 'भारतीय संगीत का इतिहास' उमेश जोशी, पृ. २३६-२३२
२ अ शार्ट हिस्टोरिकल सर्वे ऑफ दि म्यूज़िक आफ अपर इण्डिया, भातखण्डे, पृ. २८
३ संगीत के जीवन पृष्ठ, डा. सुरेशव्रत राय, पृ. १५०
४ वही , पृ. १५५

शाह जफर हुये इनके द्वारा रचित गज़लें आज भी 'जफर' नाम से गायी जाती हैं। ये शायर होने के साथ-साथ उत्तम संगीतज्ञ भी थे।

इस प्रकार मुगल काल में अकबर के बाद जिस विलासप्रियता का समावेश संगीत-कला में होने लगा था वह दिनों दिन बढ़ती गयी और शास्त्रीय संगीत का जनसाधारण से पूर्णरूपेण संबंध विच्छेद हो गया। वह पूर्णतः राजदरबारों, रियासतों और वेश्याओं के कोठों में कैद हो चुका था। राज-दरबारों और कोठों के वातावरण ने संगीत को विलासिता का जामा पहना दिया। भारतीय संगीत के आत्मिक सौन्दर्य का जितना ह्रास मुगल काल के अंत में हुआ उतना पिछले इतिहास में कभी नहीं देखा गया। संगीत गायन के लिये ख्यालों, ठुमरियों और गज़लों में जिन कवित्तों का उपयोग हुआ वे श्रृंगार प्रधान थे अतः आम जनता इन्हें अस्पृश्य समझने लगी।

४ — आधुनिक काल (१८०० ईसवी से वर्तमान तक)

आधुनिक काल को सुविधा की दृष्टि से दो भागों में विभक्त करना आवश्यक है।

(अ) ब्रिटीश काल (१८५० से १९४७)[1]

(ब) स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से (१९४७)[2] से अब तक का समय।

(अ) ब्रिटीश काल

मुगल साम्राज्य के पतन के पश्चात ब्रिटीश साम्राज्य की स्थापना भारत में हुई। परिणामस्वरूप भारतीय जनता पर अंग्रेज़ी प्रभाव पड़ने लगा। अंग्रेज़ों की

---

१ 'भारतीय संगीत का इतिहास', भगवतशरण शर्मा, पृ. ९९
२ वही " " " " ", पृ. १६६

भारतीय संस्कृति और संगीत में रुचि न होने के कारण सहज ही भारतीय संगीत को मिलने वाला राज्याश्रय टूटने लगा। संगीत कला और कलाकारों की प्रतिष्ठा कम होने लगी। सुशिक्षित समाज और राजे-महाराजे पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण करने में स्वयं को श्रेष्ठ समझने लगे। अंग्रेजों ने भारतीय संस्कृति की सदा उपेक्षा की; परिणामस्वरूप भारतीय संगीत कला और कलाकारों को भी तिरस्कार का सामना करना पड़ा। जिससे संगीत कला गणिका और वेश्याओं के हाथों में चली गयी। तब सभ्य समाज में उपरोक्त प्रकार के संगीत के सम्पर्क में आना भी निषिद्ध समझा गया।

इन परिस्थितियों में जो थोड़े से संगीतज्ञ और कलाकार बचे वे छोटी-छोटी रियासतों के राजाओं के आश्रय में रहने लगे। आज जो संगीत कला हमारे पास बची है वह और हम आज इन राजदरबारों के ही ऋणी हैं। इन राजदरबारों के आश्रित कलाकारों ने यहाँ अपने शिष्य और पुत्रों के द्वारा अपनी-अपनी स्वतंत्र शैली का विकास किया। और यहीं से संगीत घरानों की बेड़ियों में बुरी तरह से जकड़ने लगा। इस बंधन के लाभ और हानि दोनों ही हुये जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

इस समय तक ख्याल गायकी लोकप्रिय हो गयी थी। विद्या प्राप्ति के लिये गुरु के पास रहकर अत्यंत कष्ट करने पड़ते थे। तथा गुरु की इच्छा के अनुसार ही शिक्षा मिलती थी। संगीत का शास्त्र पक्ष पूर्णतः उपेक्षित माना गया मुख्य बल क्रिया पक्ष को दिया जाने लगा। इस कठोर परिस्थिति में भी उस काल में नामी कलाकार उत्पन्न हुये। परंतु, इन कलाकारों को सुनने वाले उनकी कला की कद्र करने वाले व्यक्ति समाज में नहीं थे। जिससे संगीत कला मुट्ठी भर रसिकों तक ही सीमित हो गयी। इस काल में नवीन संगीत सम्बन्धी ग्रंथों का निर्माण न हो सका

इन परिस्थितियों में संगीत कला और शास्त्र का परस्पर संबंध निश्चित किया जाय इस उद्देश्य से जयपुर

महाराज प्रतापसिंग ने सभी प्रसिद्ध गायकों की परिषद बुलवाई तथा परिषद का ब्योरा, 'संगीतसार' नामक ग्रंथ के रूप में प्रसिद्ध किया।

पाटना के मुहम्मद रजा ने, 'नगमाते आसफी' ग्रंथ लिखकर राग वर्गीकरण की नवीन पद्धति का प्रतिपादन किया। इसी समय सौरीन्द्रमोहन टैगोर ने 'universal History of music' और 'music from various Authors' ये दो पुस्तकें लिखकर नयी और पुरानी संगीत पद्धति की जानकारी देने का प्रयत्न किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शास्त्रीय रागदारी के आधार पर बंगाली भाषा में गीतों की रचना करके, 'रवीन्द्र संगीत' के रूप में एक नयी गायन शैली का प्रचार बंगाल में किया।

इन सब प्रयत्नों के परिणामस्वरूप सुशिक्षित समाज में संगीत कला के प्रति रुचि उत्पन्न होने लगी। सबसे पहले १०१६ में बड़ौदा में एक बड़ी संगीत परिषद का आयोजन हुआ।[1] इसके पश्चात् दिल्ली, बनारस आदि स्थानों पर संगीत परिषदों का आयोजन हुआ। इन परिषदों में गायकों और संगीतज्ञों में राग-नियमों के विषय पर चर्चा और एक दूसरे के विचारों का आदान-प्रदान प्रारंभ हुआ। इतना होने पर भी संगीत कला साधारण जन से दूर ही रही। इस परिस्थिति में संगीत कला को साधारण जन की पहुँच में लाने तथा उसे लोकप्रिय बनाने का जो कार्य पंडित विष्णुद्वयों ने किया उनका उल्लेख किया जाना यहाँ आवश्यक है। इन कार्यों एवं प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप ही संगीत कला को आज हम इस स्थान पर देख रहे हैं। और यही इतिहास आज हमें प्रेरणा के नये स्रोत प्रदान करने में सक्षम है। क्योंकि जिन परिस्थितियों में इन दोनों महापुरुषों ने संगीत कला के उत्थान का कार्य किया आज हमारे सामने परिस्थितियाँ उससे अच्छी ही हैं।

---

१ भातखण्डे स्मृति ग्रंथ, पृ.६५

पंडित विष्णुनारायण भातखण्डे —

पंडित विष्णुनारायण भातखण्डे का जन्म १८६० में हुआ। वे पेशे से वकील थे। परंतु संगीत विषय में अत्यधिक रुचि होने के कारण वे वकालत छोड़कर संगीत की ओर बढ़े। उन्होंने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करके बड़े-बड़े कलाकारों का गायन सुनकर विभिन्न घरानों की अनेक बंदिशें स्वरलीपिबद्ध करके, 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका' इस नाम की पुस्तक के छः भाग लिखे जो आज हमारे पास उत्तर-भारतीय संगीत की अमूल्य निधि के रूप में हैं। संगीत की शास्त्रीय जानकारी देने वाले, 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति' इस चार भाग वाले ग्रंथ की रचना की। संस्कृत भाषा में उनके द्वारा लिखा ग्रंथ, 'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' भी हमारे लिये उपयोगी है।

१९१६ में बड़ौदा में एक बड़ा संगीत सम्मेलन हुआ। उसका उद्‌घाटन बड़ौदा नरेश सायाजीराव गायकवाड़ ने किया। इस सम्मेलन में भातखण्डे जी के संगीत संबंधी भाषणों का संकलन अंग्रेजी में, 'A short Historical survey of the music of India' इस पुस्तक के रूप में किया गया। पंडित जी ने, 'Comparative study of the system of music' यह ग्रंथ भी लिखा। इसके अतिरिक्त १० थाटों में अधिकतर सभी प्रचलित रागों का वर्गीकरण भी उनके द्वारा ही किया गया; जिससे संगीतज्ञों में में एक नीयमबद्ध प्रणाली से गाने-बजाने की परिपाटी का आरंभ हो सके। इसके अतिरिक्त उन्होंने संगीत शिक्षा के लिये एक सरल स्वरलीपि पद्धति का निर्माण किया जो आज भी संपूर्ण भारत में उत्तर भारतीय संगीत की शिक्षा प्रदान करने के लिये प्रयोग की जाती है।

संगीत कला का प्रचार हो और उसकी शिक्षित समाज में रुचि बढ़े इसके लिये पंडित भातखंडे जी ने विभिन्न स्थानों पर संगीत सम्मेलनों के आयोजन की

व्यवस्था की। ये सम्मेलन बड़ौदा, दिल्ली, बनारस और लखनऊ में हुये। संगीत कला के प्रसार के उद्देश्य से उन्होंने म्यूजिक कालेजों की स्थापना की; इनमें लखनऊ का, "मॉरिस म्यूज़िक कॉलेज, ग्वालियर का 'माधव संगीत विद्यालय' तथा बड़ौदा का म्यूज़िक कालेज विशेष उल्लेखनीय हैं।

भातखण्डे जी अपने महान् तथा योजनापूर्ण कार्यों द्वारा संगीत जगत में चिरस्मरणीय तथा वंदनीय रहेंगे।

पंडित विष्णूदिगम्बर पलुस्कर —

पंडित विष्णू दिगम्बर पलुस्कर का जन्म सन् १८७२ में हुआ। उनकी संगीत शिक्षा बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर के पास हुई। उनके समय में समाज में गायकों की स्थिति अत्यंत शोचनीय थी। समाज में संगीतज्ञों को उच्च वर्ग के लोग अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे। इन अरुचिकर परिस्थितियों का उनके हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा, अतयेव उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक सम्मानित कुटुम्बों में संगीत का चमत्कार और प्रतिष्ठा स्थापित न हो जाय तब तक चैन से नहीं बैठूँगा। और इस प्रतिज्ञा-पूर्ति के लिये उन्होंने महान प्रयत्न किये। सर्वप्रथम उन्होंने गीतों में से श्रृंगार रस के अश्लील शब्दों को हटाकर भक्तिरस को स्थान दिया। भक्तिमय आकर्षक गीतों की ओर सामान्य जनों का ध्यान स्वतः आकर्षित हुआ और उनकी रुचि संगीत की ओर बढ़ने लगी। संगीत शिक्षा के लिये पंडितजी ने, 'गांधर्व महाविद्यालय' की स्थापना सर्वप्रथम लाहौर में की। बाद में बंबई का, 'गांधर्व महाविद्यालय' स्थापित हुआ और यही मुख्य केन्द्र बनाया गया। आज इससे संबद्ध अनेक केन्द्रों की स्थापना विभिन्न शहरों में संगीत शिक्षा के लिये की गयी

है। पंडित जी के प्रयत्नों के फलस्वरूप ही। संगीत शिक्षण जनता के लिये सुगम हो सका।

अपने शिष्यों को अनेक कलाकारों का गायन सुनने को मिले और उनकी संगीत कला में उत्कृष्टता आये इस दृष्टि से उन्होने संगीत परिषदों का आयोजन आरंभ किया। तथा इन परिषदों में गायक ही गायकों का सम्मान करें इस प्रथा की शुरूआत की जिससे उनके आपसी द्वेष भाव दूर हों। पहले गाना बजाना दरबारों में तथा कुछ खास स्थानों पर ही होता था. अतः सर्वसाधारण जनता को सुनने को कभी मिलता ही नहीं था। इस परिस्थिति को बदलने के लिये उन्होंने जलसों की शुरूआत करके जनता के लिये संगीत श्रवण का मार्ग खोल दिया।

उन्होनें हिन्दी मासिक पत्रिका 'संगीतामृत प्रवाह' और मराठी मासिक, 'संगीत कलाविहार' प्रकाशित करनी प्रारंभ की संगीत विषय पर उन्होनें अनेक पुस्तकें भी लिखीं जो इस प्रकार हैं - 'संगीत बाल बोध', 'स्वलपालाप गायन', 'संगीत तत्व दर्शक', 'राग प्रवेश' 'भजनामृत लहरी' आदि। उन्होनें सात्विक और शिष्ट संगीत के प्रचार के लिये अनेक कुशल कलाकार शिष्य भी तैयार किये जिनमें प्रमुख हैं विनायकराव पटवर्धन, ओंकारनाथ ठाकुर, कृष्णराव शंकर पंडित, नारायण राव व्यास, नारायण राव खरे आदि।

इस प्रकार पंडित विष्णूनारायण भातखण्डे तथा पंडित विष्णू दिगम्बर पलुस्कर इन दोनों ने ही संगीत की उन्नति के लिये महान् तथा अतुलनीय कार्य किये। दोनों ने ही संगीत के प्रचार-प्रसार के लिये अपनी-अपनी पद्धति के अनुसार कार्य किया। संगीत के प्रति सर्वसाधारण में रुचि निर्माण की। संगीत कला को समाज में उच्च स्थान दिलवाया। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि इन दोनों मनीषियों के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप ही दूध-खून

के रिश्तों पर पाली-पोसी सेनियों की विधा, पाने का अधिकार हम सबको आज मिल सका है।

(ब) स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद का समय

(१९४६ से आज तक का समय)

भारत के स्वतंत्र होते ही भारतीय संगीत ने भी एक नवीन करवट ली। अब तक भारतीय संगीत रियासती राजाओं के संरक्षण में पनप रहा था, किन्तु रियासतों के विलीनीकरण के उपरांत राष्ट्रीय सरकार ने भारतीय संगीत को संरक्षण प्रदान किया। राष्ट्र के नव निर्माण में जितनी आवश्यकता राजनीति पर ध्यान देने की होती है उतनी ही कला और संस्कृति के के विकास पर भी, और उस विकास में राष्ट्रीय सरकार ने जो योगदान दिया है वह प्रशंसनीय है।

भारत सरकार ने संगीत कला को प्रोत्साहन देने के लिये राष्ट्रपति पदक प्रदान करने आरंभ किये। 'संगीत नाटक अकादमी' की स्थापना सर्वप्रथम दिल्ली में हुई फिर धीरे-धीरे सभी प्रान्तों में 'संगीत नृत्य अकादमियों' की स्थापना की गयी। इससे संगीतज्ञों और कलाकारों में प्रगति की ओर बढ़ने की लालसा जागी। अखिल भारतीय आकाशवाणी ने सन् १९५२ से राष्ट्रीय संगीत का महत्वपूर्ण कार्यक्रम प्रसारित करना आरंभ किया।[१] जिसके फलस्वरूप आकाशवाणी के रंगमंच पर कर्नाटक तथा उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रायः सर्वश्रेष्ठ कलाकारों ने अपनी कला का प्रदर्शन किया और आज भी कर रहे हैं। यद्यपि भारत में रेडियो प्रसारण का प्रारंभ १९२४ में हो चुका था[२] पर इसका वास्तविक विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्

---

१ Broadc sting in India, G.C. Awasthi, page 40.

२ रेडियो लेखन, मधुकर गंगाधर, पृ. १५

ही संभव हो सका। तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही शास्त्रीय संगीत के प्रसारण को भी आकाशवाणी को उचित स्थान मिल सका। भारत में शास्त्रीय संगीत के प्रचार और प्रसार में दूरदर्शन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। हिन्दुस्तान में दूरदर्शन प्रसारण १५ सितम्बर १९५९ को आरंभ हुआ।[1] तब से आज तक दूरदर्शन ने विकास के अनेक चरण पार किये हैं; यहाँ उन का उल्लेख किया जाना आवश्यक नहीं है। पर दूरदर्शन अपनी क्षमता के अनुसार शास्त्रीय संगीत का जितना भी प्रसारण कर रहा है उससे अनेक सामान्य जनों का ध्यान अवश्य इस कला की ओर आकर्षित हो रहा है। इस कार्य में दूरदर्शन द्वारा प्रसारित ५-6 मि. के वे कार्यक्रम अत्यन्त प्रभावी हो रहे हैं जो किसी फिल्म के मध्यान्तर में या किसी रुचिकर कार्यक्रम प्रसारण से कुछ पहले या कार्यक्रम के समाप्त होने के बाद तुरंत बाद प्रसारित किये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त आज भारतीय शास्त्रीय संगीत की जो उन्नति, प्रचार और सर्वजनसामान्य सुलभता दिख रही है, उसमें उपरोक्त उपकरणों के अतिरिक्त मुख्य योगदान विद्यालयीन, महाविद्यालयीन और विश्वविद्यालयीन संगीत शिक्षा का है। इसकी आधार-शिला विष्णुद्वय ने रखी थी। आज हमारे यहाँ ४1 विश्वविद्यालय हैं जो संगीत की उच्च शिक्षा प्रदान कर रहे हैं।[2] इन विश्वविद्यालयों में प्रतिवर्ष सैकड़ों विद्यार्थी परीक्षा दे रहे हैं और प्रतिवर्ष एम. ए. तथा एम. म्यूज़ की डिग्रियाँ लेकर निकल रहे हैं।

फिर क्या कारण है कि शास्त्रीय संगीत के लिये इतना जागरण, प्रयास और सुविधायें उपलब्ध होने पर भी इन विश्वविद्यालयों से यदि कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाय तो कलाकारों की उत्पत्ति न

---

1 आकाश भारती वर्गीस कमेटी रिपोर्ट, भाग 1, पृ. 10

2 university hand-book १९८५-८६, पृ. ८३

के बराबर है। साथ ही संगीत कला और शिक्षा का स्तर भी दिनप्रतिदिन गिरता जा रहा है। मेरे अनुसंधान की मुख्य ये ही दो समस्यायें हैं। अब देखना यह है कि यह समस्यायें किन कारणों से उत्पन्न हैं? और समस्याओं के समाधान क्या हो सकते हैं?